नादब्रह्म—मोहनकी मुरली

नादात्मकं नादबीजं प्रयतं प्रणवस्थितम्।
वन्दे तं सच्चिदानन्दं माधवं मुरलीधरम्॥
नादरूपं परं ज्योतिर्नादरूपी परो हरिः॥

'नाद ही परम ज्योति है और नाद ही स्वयं परमेश्वर हरि है।'

नाद अनादि है। जबसे सृष्टि है, तभीसे नाद है। महाप्रलयके बाद सृष्टिके आदिमें जब परमात्माका यह शब्दात्मक संकल्प होता है कि 'मैं एक बहुत हो जाऊँ', तभी इस अनादि नादकी आदि-जागृति होती है। यह नादब्रह्म ही शब्द-ब्रह्मका बीज है। वेदोंका प्रादुर्भाव इसी नादसे होता है। नादका उद्भव परमेश्वरकी सच्चिदानन्दमयी भगवती स्वरूपा-शक्तिसे होता है और इस नादसे ही बिन्दु उत्पन्न होता है। यह बिन्दु ही प्रणव है और इसीको बीज कहते हैं।

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादस्तस्माद् बिन्दुसमुद्भवः॥
नादो बिन्दुश्च बीजश्च स एव त्रिविधो मतः।
भिद्यमानात् पराद्बिन्दोरुभयात्मा रवोऽभवत्।
स रवः श्रुतिसम्पन्नः शब्दो ब्रह्माभवत् परम्॥

'सच्चिदानन्दरूप वैभवयुक्त पूर्ण परमेश्वरसे उनकी स्वरूपाशक्ति आविर्भूत हुई, उससे नाद प्रकट हुआ और नादसे बिन्दुका प्रादुर्भाव हुआ। वही बिन्दु नाद, बिन्दु तथा बीजरूपसे तीन प्रकारका माना गया है। बीजरूप बिन्दु जब भेदको प्राप्त हुआ, तब उससे अव्यक्त और व्यक्त प्रकारके शब्द प्रकट हुए। व्यक्त शब्द ही श्रुतिसम्पन्न श्रेष्ठ शब्दब्रह्म हुआ।

यही नाद क्रमशः स्थूलरूपको प्राप्त होता हुआ समस्त जगत्में फैल जाता है। पाँच भूतोंमें सबसे पहले महाभूत आकाशका गुण शब्द है। यह नादका ही एक रूप है। आदि-नादरूप बीजसे ही पञ्चतत्त्वकी उत्पत्ति मानी गयी है। इस स्थूल नादकी उत्पत्ति अग्नि और प्राणके संयोगसे होती है। ब्रह्म-ग्रन्थिमें प्राण रहता है, इस प्राणको अग्नि प्रेरणा करती है। अग्निमें यह प्रेरणा आत्मासे प्रेरित चित्तके द्वारा होती है। तब

प्राणवायु अग्निसे प्रेरित होकर नादको उत्पन्न करता है। यह नाद नाभिमें अति सूक्ष्म, हृदयमें सूक्ष्म, कण्ठमें पुष्ट, मस्तकमें अपुष्ट और वदनमें कृत्रिमरूपसे आकार धारण करता है। कहते हैं कि 'न' कार प्राण है और 'द' कार वह्नि है और प्राण तथा वह्निके संयोगसे उत्पन्न होनेके कारण ही इसको 'नाद' कहते हैं।

योगी लोग इसी नादकी उपासना करके ब्रह्मको प्राप्त किया करते हैं। हठयोग-शास्त्रोंमें इसका बड़ा विस्तार है। मुक्तासन और शाम्भवी मुद्राके साथ इस नादका अभ्यास किया जाता है। इस नादसाधनासे सब प्रकारकी सिद्धियाँ मिलती हैं। अनाहतनाद योगियोंका परम ध्येय है। शास्त्रोंमें नादको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धिका एक साधन माना है। नादके बिना जगत्का कोई भी कार्य नहीं चल सकता। पाञ्चभौतिक जगत्में आकाश सर्वप्रधान है और आकाशका प्राण नाद ही है। इसीसे जगत्को नादात्मक कहते हैं। नादका माहात्म्य अपार है। संगीतदर्पणकी एक सुन्दर उक्ति है कि देवी सरस्वतीजी नादरूपी समुद्रमें डूब जानेके भयसे ही वक्षःस्थलमें सदा तूँबी धारण किये रहती हैं।

नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती।
अद्यापि मज्जनभयात्तुम्बं वहति वक्षसि॥

संगीत और स्वरका तो प्राण ही नाद है। गीत, नृत्य और वाद्य नादात्मक हैं। नादद्वारा ही वर्णोंका स्फोट होता है। वर्णसे पद और पदसे वाक्य बनता है। इस प्रकार समस्त जगत् ही नादात्मक है।

यह नाद मूलतः परमात्माका ही स्वरूप है। जब भगवान् लीलाधाममें अवतीर्ण होते हैं, तब उनके दिव्य विग्रहमें जितनी कुछ वस्तुएँ होती हैं, सभी दिव्य सच्चिदानन्दमयी भगवत्स्वरूपा होती हैं। इसीसे अवतारविग्रहकी वाणीमें इतना माधुर्य होता है कि उसको सुनते-सुनते चित्त कभी अघाता ही नहीं और यह सोचता है कि लाखों-करोड़ों कानोंसे यह मधुर ध्वनि सुननेको मिले तब भी तृप्ति होनी कठिन है। चिदानन्दमय श्रीकृष्णस्वरूपमें तो इस नादका भी पूर्णावतार हुआ था। श्यामसुन्दरकी सच्चिदानन्दमयी मुरलीका मधुर निनाद ही यह नादावतार था। इसीसे उस मुरलीनिनादने प्रेममय व्रजधाममें जडको चेतन और चेतनको जड बना दिया।

मोहनके वेणुनिनादने वृन्दावनके प्रत्येक आबाल-वृद्धमें, प्रत्येक पशु-पक्षीमें, स्थावर-जंगममें, पत्र-पत्रमें, कण-कणमें और अणु-अणुमें प्रेमानन्द भर दिया। उस वंशीनादको सुनकर विमानोंपर चढ़ी हुई सुरबालाओंके धैर्यका बन्धन छूट गया। वे सहसा मुग्ध हो गयीं। उनकी कबरियोंमें खोंसे हुए नन्दनकाननके कमनीय कुसुम हठात् वहाँसे खिसककर मर्त्यभूमिपर गिर पड़े। गन्धर्व-कन्याएँ संगीत भूलकर मतवाली-सी झूमने लगीं। ऋषि, मुनि, तपस्वी, परमहंस योगियोंको ब्रह्म-समाधि भङ्ग हो गयी। बरबस उनका मन वीणास्वरसे विमोहित मृगकी भाँति मुरलीध्वनिमें निमग्न हो गया। सुधाकरकी चाल बंद हो गयी। श्रीकृष्णके उस वेणुविनिर्गत ब्रह्मनादामृतका पान करनेके लिये बछड़ोंने स्तनोंको खींचना छोड़कर केवल उन्हें मुँहमें ही रहने दिया। गौएँ चरना भूल गयीं। सुरम्य वृन्दारण्यके विहंगोंने मधुर काकलीका त्याग करके वंशीध्वनिसे झरनेवाले अनिर्वचनीय आनन्दका उपभोग करनेके लिये आँखें मूँद लीं और श्रवणपात्रोंका मुख उस सुधाधाराके प्रवाहमें लगा दिया। सिंह-मृगादि वनचर प्राणी भय और हिंसा भुलाकर मुरलीमनोहरको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये और कान तथा आँखोंको अतृप्त बोध करने लगे। महिषी कालिन्दी अपनी ऊर्मि-भुजाओंको फैलाकर परम प्रियतमका आलिङ्गन करनेके लिये दौड़ पड़ीं। इस प्रकार दिव्य धामकी दिव्य सुधाधारा समस्त धरामण्डलमें बह चली। चेतन जीव जडवत् अचल हो गये और साक्षात् रसराजकी रसधारासे प्लावित होकर वृक्ष ही नहीं, सूखे काठतक रस बरसाने लगे। सूरदासजीने कहा है—

जब हरि मुरलीनाद प्रकास्यौ।
जंगम जड, थावर चर कीन्हे, पाहन जलज बिकास्यौ॥
स्वरग-पताल दसों दिसि पूरन धुनि आच्छादित कीनौ।
निसि हरि कलप समान बढ़ाई, गोपिन कौं सुख दीनौ॥
जड सम भए जीव जल-थल के, तनकी सुधि न सम्हारा।
सूर स्याम मुख बेनु बिराजत पलटे सब ब्यवहारा॥

एक गोपी रसोई बना रही थी, इतनेमें मोहनकी मुग्धकारिणी मुरली बजी। मुरलीध्वनिके साथ ही मुरलीधरकी मधुर छवि गोपीके ध्यान-नेत्रोंके सामने आ गयी।

इधर उस रसवर्षिणी मुरलीध्वनिने रस बरसाकर चूल्हेकी सारी लकड़ियोंके हृदयको गीला कर दिया, उसमेंसे रस बहने लगा। आग बुझ गयी। परम भाग्यवती सच्चिदानन्द-प्रेमिका गोपी-प्रेमका उलाहना देती हुई-सी बोली—

मुरहर ! रन्धनसमये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम्।
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतरताम्॥

'हे मुरारे ! भला, भोजन बनाते समय तो कृपाकर इस मुरलीकी मधुर तान न छेड़ा करो। देखो, तुम्हारी मुरलीध्वनिसे मेरा सूखा ईंधन रसयुक्त होकर रस बहाने लगता है, जिससे चूल्हेकी आग बुझ जाती है।' इस जादूभरी मुरलीके नादने सबको उन्मत्त कर दिया। महान् योगी भी इससे नहीं बचने पाये। बचते भी कैसे ? योगियोंके अनाहत नादकी जननी तो यह मुरली ही है। वंशीध्वनिकी महिमा गाते हुए भक्त कहते हैं—

ध्यानं बलात् परमहंसकुलस्य भिन्दन्
निन्दन् सुधामधुरिमाणमधीरधर्मा।
कंदर्पशासनधुरां मुहुरेव शंसन्
वंशीध्वनिर्जयति कंसनिषूदनस्य॥

'निर्बीज-समाधिनिष्ठ परमहंसोंकी समाधिको हठात् तोड़ डालनेवाली, सुधाके माधुर्यको फीका बना देनेवाली, धैर्यवान् पुरुषोंके धैर्यको तोड़कर उनकी अधीरताको उत्तेजित करनेवाली, कामदेवपर विजयदुन्दुभि बजाकर उसको अपने शासनमें रखनेवाली भगवान् श्रीकृष्णकी यह वंशीध्वनि विश्वमें सब ओर विजयिनी हो रही है।'

वृन्दावननिवासी चराचर जीवोंका परम सौभाग्य था जो वे इस वंशीध्वनिको सुनते थे और उन गोपीजनोंके भाग्यकी तो ब्रह्मादि देवतागण भी ईर्ष्या करते हैं, जिनका आवाहन करनेके लिये मोहन स्वयं अपनी इस मधुर मुरलीकी मधुर तान छेड़ा करते थे। वे सुनती थीं और मुग्ध होती थीं; चेतनाका विसर्जन कर देती थीं, परंतु सुनना कभी छोड़ती ही नहीं थीं। संध्याको गोधूलिके समय जब प्राणधन श्यामसुन्दर वनसे लौटते थे, उस समय व्रज-बालाओंके झुंड-के-झुंड घरोंसे निकलकर रास्तोंमें उनकी प्रतीक्षा करते थे। एक दिन एक नवीन व्रजगोपी मुरलीध्वनिकी प्रतीक्षामें घरके

बाहर दरवाजेपर खड़ी थी; उसे देखकर, वंशी और वंशीधरकी महिमाका व्याजसे बखान करती हुई दूसरी महाभागा गोपी कहती है—

सुनती हौ कहा, भजि, जाहु घरै, बिंध जाओगी नैनके बानन में।
यह बंसी 'निवाज' भरी बिष सौं बगरावति है बिष प्रानन मैं॥
अबहीं सुधि भूलिहौ भोरी भटू, भँवरौ जब मीठी-सी तानन मैं।
कुलकानि जो आपनि राखि चहौ, दै रहौ अँगुरी दोउ कानन मैं॥

वंशीनादसे आकृष्ट गोपीजनोंकी प्रेमविह्वल दशाका वर्णन भगवान् वेदव्यासजीने भागवतमें बहुत ही सुन्दर रूपसे किया है। भागवतका वेणुगीत प्रसिद्ध है। भावुक भक्तजन उसे अवश्य पढ़ें-सुनें।

भक्त रसखान कहते हैं—

कौन ठगौरी भरी हरि आजु, बजाई है बाँसुरिया रँगभीनी।
तान सुनी जिनहीं, तिनहीं तबहीं कुल-लाज बिदा करि दीनी॥
घूमै घरी-घरी नंदके द्वार, नवीनी कहा कहूँ बात प्रबीनी।
या ब्रजमंडल में रसखानि सु कौन भटू जो लटू नहिं कीनी॥
बजी सुबजी रसखानि बजी, सुनि कै अब गोकुल-बाल न जीहै।
न जीहै कदाचित कानन कौ, अब कान परी बह तान अजी है॥
अजी है, बचाओ, उपाय नहीं, अबला पर आनि कै सैन सजी है।
सजी है हमारौ कहा बस है, जब बैरिन बाँसुरी फेरि बजी है॥
आजु अली एक गोपलली भइ बावरि, नैकु न अंग सँभारै।
मातु अघात न देवन पूजत, सासु सयानि-सयानि पुकारै॥
यौं रसखानि फिरी सगरे ब्रज, आन कुआन उपाय बिचारै।
कोउ न कान्हरके कर तें वह बैरन बाँसुरिया गहि डारै॥
ऐ सजनी बह नंदकुमार सु या बन धेनु चराइ रह्यौ है।
मोहनी तानन गोधन-गायन बेनु बजाइ रिझाइ रह्यौ है॥
ताही समै कछु टोनौ करौ, रसखानि हिये सु समाइ रह्यौ है।
कोउ न काहु की कानि करै, सिगरौ ब्रज बीर! बिकाइ रह्यौ है॥

मोहनकी मुरलीसे प्रभावित व्रजधामकी कुछ कल्पना भक्त कविके उपर्युक्त शब्दोंसे की जा सकती है। एक गोपी बाँसुरीसे तंग आकर अपनी सखियोंसे कहती है—

अब कान्ह भए बस बाँसुरि के, अब कौन सखी हम कौं चहिहै।
वह रात-दिना सँग लागी रहै, यह सौत कौ सासन को सहिहै॥
जिन मोह लियौ मन मोहन कौ, रसखानि सु क्यों न हमैं दहिहै।
मिलि आओ, सबै कहुँ भाजि चलैं, अब तौ व्रज में बँसुरी रहिहै॥

दूसरी एक बाँसके साथ बाँसकी बनी बाँसुरीकी तुलना करके और उसे वंशका नाम बिगाड़नेवाली बतलाती हुई कहती है—

वै मगदायक अंधनि के, तुम अच्छिनहू की सुचाल बिगारयौ।
वै जलथाह बतावत हैं, तुम प्रेम अथाह के बारिधि पारयौ॥
वै बर बास बसायँ भले तुम बास छोड़ाय उजार में डारयौ।
का कहिये, हरि की मुरली! तुम आपने बंस कौ नाम बिगारयौ॥

दूसरी कहती है—अरी मुरली! तेरे सौभाग्यका क्या कहना है—

अधर सेज नासा बिजन स्वर मिस चरन दबाय।
अरी सोहागिनि मुरलिया! लियौ स्याम बिलमाय॥

तीसरी एक मुरलीके साथ ईर्ष्या करती हुई बड़े विनययुक्त शब्दोंमें मुरलीसे पूछती है—

मुरली! कौन तप तैं कियौ।
रहत गिरधर मुखहि लागी, अधर कौ रस पियौ॥
नंदनंदन पानि परसे, तोहि तन मन दियौ।
सूर श्रीगोपाल बस किए, जगत मैं जस लियौ॥

मुरली उत्तर देती है—

तप हम बहुत भाँति करयौ।
हेम-बरषा सही सिर पै, घाम तनहि जरयौ॥
काटि बेधी सप्त सुर सौं, हियौ छूछौ करयौ।

तुमहि बेगि बुलायबे कौं लाल अधरन धर्‌यौ॥
इतने तप मैं किए, तबहीं लाल गिरधर बर्‌यौ।
सूर श्रीगोपाल सेवत सकल कारज सर्‌यौ॥

मैंने बड़े-बड़े तप किये हैं, जीवनभर सिरपर जाड़ा और वर्षा सहती रही, ग्रीष्मकी ज्वालामें मैंने तनको तपाया। काटी गयी, शरीरको सात खरोंसे छिदवाया। हृदयको शून्य कर दिया। कहीं कोई गाँठ नहीं रहने दी। इतना तप करनेपर लालने मुझको वरा है।

प्राणधन श्रीगोपालके अधरामृतका पान चाहनेवाले प्रत्येक भक्तको वंशीकी इस साधनाका अनुकरण करना चाहिये। याद रहे, जबतक लौकिक सुख-दुःखमें समता और सहिष्णुता नहीं आती, जबतक प्रियतम प्रभुके लिये तन-मनकी बलि नहीं दे दी जाती, जबतक हृदयको अन्य वासना-ग्रन्थियोंसे सर्वथा शून्य नहीं कर लिया जाता, तबतक प्रियतमके मधुर आलिङ्गनका सुख हमें नहीं मिल सकता।

परंतु जो मुरलीकी भाँति साधनमें प्रवृत्त होगा, वही इस मधुर ध्वनिको भलीभाँति सुन सकेगा। वृन्दावनके प्रातःस्मरणीय भगवत्-सखा और अन्तरङ्गा शक्ति श्रीगोपीजन अपनेको इस मुरलीकी साधनामें सिद्ध करके ही मुरलीकी ध्वनिको सुन पाये थे।

उस मुरलीमें क्या बजता है और उससे जगत्‌को क्या दिया जाता है? इसका उत्तर यह है कि ह्लादिनी सुधाका अनिर्वचनीय आनन्द ही इस मधुर ध्वनिके द्वारा सबको दिया जाता है। **'कलं वामदृशां मनोहरम्।'** इस कलपदामृत वेणुगीतसे **'क्लीं'** पदकी सिद्धि होती है। कल=क+ल=क्ल। इसमें वामदृक् यानी चतुर्थ स्वर ईकार संयुक्त करनेपर **'क्लीं'** बनता है। यह मनोहर है यानी मनके अधिष्ठात्री देवता चन्द्रको या चन्द्रबिन्दुको हरण करता है। अतएव क+ल+ई+—के संयोगसे **'क्लीं'** बनता है। यह **'क्लीं'** कामबीज है। मुरलीध्वनि ही कामबीज है। यह काम भगवत्-काम है, अतएव साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है। व्रजधामके कामविजयी—मन्मथ-मन्मथ मदनमोहन तपवैराग्य-युक्त अधिकारसम्पन्न अपने भक्त साधकोंमें इस कामबीजको वितरणकर उन्हें अपनी ओर खींच लेते हैं, उनसे सर्वस्वका मोह छुड़ाकर, उनका सब कुछ भुलाकर उन्हें सहसा आकर्षित कर लेते हैं। साथ ही नरकोंकी ओर आकर्षित

करनेवाले, मन और इन्द्रियोंको विक्षुब्ध कर आत्माका पतन करनेवाले, विषय-विषका पान करनेके लिये उन्मत्त बनानेवाले गंदे कामके वशीभूत हुए जगत्के जीवोंको भी उस घृणित कामजालके फंदेसे छुड़ाकर पवित्र मधुर रसका आस्वादन करानेके लिये इस चिन्मय नादका संचार करते हैं। कामबीजकी बड़ी महिमा है। भगवान्का सृष्टि-संकल्प ही कामबीज है। यही नादस्वरूप है। इसीसे सृष्टि होती है और यही जगत्-स्वरूप बन जाता है। शास्त्र इस 'क्लीं' रूप कामबीजसे पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति बतलाते हुए इसका स्वरूप-निर्देश करते हैं—

ककारो नायकः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
ईकारः प्रकृती राधा महाभावस्वरूपिणी॥
लश्चानन्दात्मकः प्रेमसुखं च परिकीर्तितम्।
चुम्बनाश्लेषमाधुर्यं बिन्दुनादं समीरितम्॥

"'क' कार सच्चिदानन्दविग्रह नायक श्रीकृष्ण हैं। 'ई'कार महाभावस्वरूपा प्रकृति श्रीराधा हैं। 'ल'कार इन नायक-नायिकाके मिलनात्मक प्रेमसुखका आनन्दात्मक निर्देश है और नाद-बिन्दु इस माधुर्यामृतसिन्धुको परिस्फुट करनेवाले हैं।"

यह श्रीराधाकृष्णका मिलन दिव्य है। यह आत्मरमण है। (**'आत्मारामोऽप्यरीरमत्'**) यह अपने ही स्वरूपमें सच्चिदानन्द भगवान्की लीला है। इस लीलाका विकास **'क्लीं'** रूप मुरलीनिनादसे ही होता है। यह मुरलीनाद स्वयं सच्चिदानन्दमय है, ब्रह्मरूप है। यही नादब्रह्म है।

——::×::——